INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF INDIA
ISSN 2454-8707 VOLUME-II,ISSUE-V, JAN-2017

आर्यों का आदि देश

डॉ० विनय कुमार
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग गया कॉलेज, गया, बिहार, (भारत)

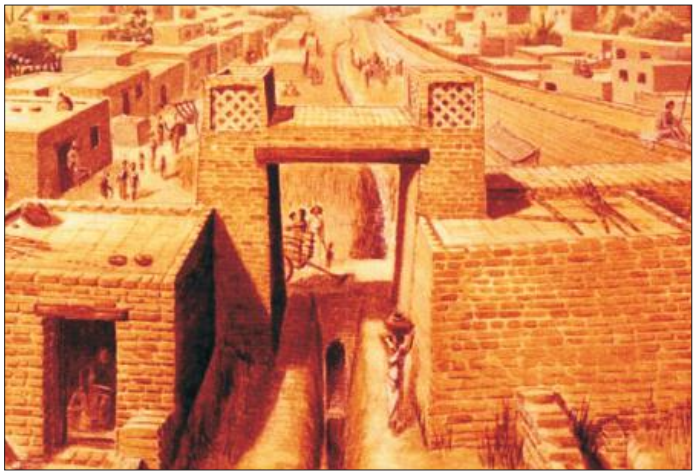

भारतीय संस्कृति की पुरातनता को लेकर कुछ मुद्दों पर लगातार फिर–फिर कर चर्चा होती रही है। उनमें से एक मुद्दा–आर्यों का आदि देश ...। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद' का केन्द्र में रखककर यह बहस फिर से शुरू हुई कि ऋग्वेद के आधार पर एक मार्क्सवादी आलोकच तक ने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्यों का आदि देश भारत ही था और वे यहीं से पश्चिमी एशिया और सुदूर यूरोप तक गए थे। दरअसल पुरातत्वेत्ताओं और प्राच्य–विद्याविशारदों के एक वर्ग में यह धारणा रही है कि आर्य मूलतः भारत देश के नहीं थे। वे दूसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व उत्तर पश्चिम से यहाँ आए थे। इस अवधारणा का प्रत्याख्यान करने के लिए ही डॉ. रामविलास शर्मा ने उपर्यूक्त पुस्तक लिखी है। इधर भारतीय संस्कृती की पुरातनता के पक्षधरों में यह फिर से चर्चा के केन्द्र में आ गयी है। इसका मूल प्रयोजन रामविलास जी के शब्दों में ''अतीत का वैज्ञानिक, वस्तुपरक विवेचन वर्तमान समाज के पुनर्गठन के प्रश्न से जुड़ा हुआ है...'' इस विवेचन के केन्द्र में है आर्यों का भारत पर आक्रमण सिद्धान्त या सिन्धुघाटी की सभ्यता को नष्ट करने वाले आर्यों की अवधारणा! पुरराकालीन या प्राचीन भारतीय इतहिास और संस्कृति के अध्येताओं के बीच प्रचलित इस सिद्धान्त और अवधारणा के परीक्षण, मूल्यांकन और उसका निराकरण करने के लिए ही यह पुस्तक लिखी गई है। पुस्तक आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में भारत पर आर्यों के आक्रमण और सिन्धु सभ्यता को नष्ट करने वाले आर्यों की अवधारणा को रामविलास जी पुरातत्व की खोजों के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों से निरस्त करना चाहते हैं। दूसरे अध्याय में वे हड़प्पा की कन्द्रबद्ध राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र का बखान करते हैं। रामविलासजी मार्क्सवादी हैं और मार्क्सवादी चिन्तन में केन्द्रीय राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र का केन्द्रीय महत्व है। इसके दर्शन उन्होंने हड़प्पा सभ्यता में भी किए हैं। तीसरे अध्याय में पश्चिमी एशिया में आर्यों के प्रभाव विस्तार की कथा विस्तार से कही गई है कि कैसे उनकी संस्कृति उनका चिन्तन, उनका देवतंत्र ही नहीं बल्कि मूर्तिशिल्प भी पश्चिम में फैलता गया। चौथे अध्याय में वे मिस्त्र, सूमेर और भारत के प्राचीन सांस्कृतिक सम्बन्धों का विवरण देते हैं और यह प्रमाणित करने की कोशिश करते हैं कि सुमेर से होते हुए मिस्त्र या फिर मिस्त्र से होते हुए सुमेर तक भारतीय सभ्यता और संस्कृति का विस्तार हुआ और वह पहुँची उत्तरी तुर्की तक! पाचँवे अध्याय में सरस्वती, भरत और जल प्रलय पर विचार किया गया है। सरस्वती नदी के विलुप्त होने का कारण जय प्रलय हौ और भरत नाम की जाति, क्लान या कबीला कैसे धीरे–धीरे पूर्व में पाँचाल की ओर प्रस्थित होता है। छठवें अध्याय में देवतंत्र के विकास पर विचार किया गया है कि भारत में वह कैसे विकसित हुआर और फिर वह ईरान, ईराक कैसे गया।

सुमेर और मिस्त्र ही नहीं, चूनान, बैबिलोन और यूरोप तक उसका विस्तार कैसे हुआ! सातवें अध्याय में वे उन सृष्टि कथाओं और दार्शनिक उद्भावनाओं का विश्लेषण करते हैं जो ऋग्वेद में आई हैं और वे किस प्रकार पश्चिमी एशिया की सभ्यतओं और संस्कृतियों को प्रभावित करती हैं। अंतिम अध्याय में अफ्रीकी–एशियाई सभ्यता की प्रसार भूमि और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान का विवेचन है। इस पुस्तक की एक और प्रेरणा, मुझे लगता है, कार्ल मार्क्स का यह विचार भी है जो पुस्तक में उद्धृत है– ''हम निश्चय पूर्वक, न्यूनाधिक सुदूर अवधि में उस महान और दिलचस्प देश को पुनर्जीवित होते देखने की आशा कर सकते हैं और जहां के सज्जन निवासी, राजकुमार साल्तिकोव (रूसी लेखन) के शब्दों में इटालियन लोगों से अधिक चतुर

और कुशल है, जिनकी अधीनता भी एक शांत गरिमा से संतुलित रहती है, जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मों का उद्‌गम है और जहां प्राचीन जर्मन का स्परूप जाट में प्राचीन यूनानी का स्वरूप ब्राह्मण में प्रतिबिम्बत है।'' मुझे लगता है कि मार्क्स के इस वाक्यांश (जिनका देश हमारी भाषाओं, हमारे धर्मों का उद्‌गम है) से रामविलासजी, अभीभूत हो गए और उनमें अपने भारतीय होने, अपने आर्य होने का गर्व जागृत हो गया। इसका प्रमाण है यह पुस्तक।... लेकिन मार्क्स ने भारत पर एक टिप्पणी और की है। मुझे याद आता है भोपाल से कला परिषद की छत पर एक गाष्ठी में श्री विजयदेव नारायण साही ने भारत पर मार्क्स की इस टिप्पणी पर सख्त एतराज करते हुए उसे अपमान जनक करार दिया था। मार्क्स ने कहा है– ''अजब है यह देश। विलासिता के संसार और क्लेश के संसार के इस अनोखे मेल, अत्यधिक ऐन्द्रियता और आत्मपीड़क तपस्या की धर्म वाले इस देश में लिंगम भी है और जगन्नाथ भी, साधु भी है और नर्तकी भी''– इस पर मैंने तब भी कहा था कि मार्क्स इससे भारत का अपमान नहीं कर रहे हैं, वे तो भारतीय समाज के पैराडॉक्स, उसके अन्तर्विरोध, उसकी द्वन्द्वात्मकता का विश्लेषण कर रहे हैं। बहरहाल। रामविलासजी भारतीयता के औदात्य को रेखांकित करना चाहते हैं, पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद में आर्य सर्वोपरिता को प्रमाणित करना चाहते हैं। एक सिद्धान्त यह है कि भारत पर आर्यों ने आक्रमण किया था और सिन्धु घाटी की सभ्यता को नष्ट करने वाले आर्य ही थे। ''यह सभी कुछ एक सोचे समझे सुनियोजित साम्राज्यवारी षड़यंत्र का हिस्सा रहा है।'' ... यह कहना है इस पुस्तक की भूमिका में श्री श्याम कश्यप का और रामविलास जी के शब्द हैं... ''भारत पर आर्यों का आक्रमण–इस मान्यता का जन्म और प्रचार एशिया में यूरोपियन साम्राज्यवाद के विस्तार से हुआ–इतिहासकारों और पुरातत्वज्ञों का दृष्टिकोण उपनिवेशवाद से प्रभावि रहा है।'' मैं यहां यह याद दिलाना चाहता हूँ कि 1921 तक तो यही मान्यता थी कि भारत की प्राचीनतम सभ्यता आर्यों की वैदिक सभ्यता है लेकिन सिंध, पंजाब, गुजरात और सौराष्ट्र में उत्खनन से अवशेष मिले उन्होंने इस मान्यता को निर्मूल सिद्ध करके यह निष्कर्ष निकाला कि आर्यों की सभ्यता पहले भी भारत में एक समृद्ध और श्रेष्ठ नागरिक सभ्यता थी। इस उत्खनन और बदली हुई धारणा लिए भी ब्रिटिश ही जिम्मेदार हैं। लेकिन कुछ लोग की बात और निष्कर्ष मेरे सिद्धान्त या मेरी अवधारणा से मेल नहीं खाते या मेरी मान्यता को सम्पुष्ट नहीं करते तो मुझे उनकी नीयत पर शक क्यों करना चाहिए ? थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि व्हीलर, मेकाय और मार्शल के निष्कर्ष 'सुनियोजित साम्राज्यवादी षड़यंत्र का हिस्सा है' तो कृपया कुझे अनुमति दें यह पूछने की कि रामविलासजी के निष्कर्ष और मान्यताएँ भी क्या सांस्कृतिक राष्ट्रवादी नहीं है ? क्यो वे सांस्कृतिक राष्ट्रवादी का मार्क्सवादी औचित्य सिद्ध नहीं कर रहे हैं ? हमारे यहां तो यह धारणा लगभग बाबा आदम के जमाने से चली आ रही है कि सब कुछ हमीं थे। भारत ही विश्व का सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गुरू रहा है। उसने ही सारी दुनिया में संस्कृति का प्रसार किया, उसीने वेद दिए, धर्म और अध्यात्म दिए। यह एक आत्ममुग्ध अवस्था है और रामविलास जी इस आत्ममुग्ध अवस्था को मार्क्सवादी दृष्टि से युक्ति–संगत सिद्ध कर रहे हैं। मैं इस प्रसंग में थोड़े विस्तार से अपनी बात कहने की अनुमति चाहता हूँ। पहले ऋग्वेद के रचनाकाल के बार में।

विन्टरनिट्‌ज इसे 3000 ईसा पूर्व मानता है। रामविलास जी इसे 3500 ईसा पूर्व मानते हैं। कुछ इसे 5000 ईसा पूर्व भी मानते हैं। बहरहाल। इस पुस्तक में यह भी गहा गया है कि ''युनान की दर्शन और विज्ञान यूरोप के दर्शन और विज्ञान की आधारशिला है। इस दर्शन और विज्ञान की अनेक मूलभूत स्थापनाएं भारतीए चिन्तन में सबसे पहले ऋग्वेद में विद्यमान हैं ?''– क्या इससे यह ध्वनि भी नहीं निकलती कि सारा दर्शन और विज्ञान यहाँ से वहाँ गया है। रामविलासजी सर विलियम जोन्स को उद्धृत करते हैं। ''ग्रीक की अपेक्षा संस्कृत अधिक पूर्ण है, लेटिन की अपेक्षा अधिक समृद्ध है और दोनों में से किसी की अपेक्षा अधिक सुचारू रूप से परिष्कृत है। पर दोनों के क्रियामूलों और व्याकरण रूपों कें उसका इतना गहरा सम्बन्ध सचमूच ही इतना सुस्पष्ट है कि कोई भी भाषाशास्त्री इन तीनों की परीक्षा करने पर यह विश्वास किए बिना नहीं कर सकता कि वे एक ही स्त्रोत से जन्मी है, जो स्त्रोत शायद अब विद्यमान नहीं है।'' मैं पूछना चाहता हूँ कि क्या यह स्त्रोत ऋग्वेद ही है ? भारत ही है ? पुरातत्व के बारे में मुझे जार्ज बर्नार्ड शॉ का एक वाक्य याद आ गया– ''आर्कियोलॉजी... इट्‌स अ गुड सब्जेक्ट.... व्हेरी फ्यू ने इट, एण्ड स्टिल फ्यूर कैन क्वेश्चन इट''... तो रामविलास जी ने भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धान्त के पुराने और नये आधारों के साथ भारत के पुरातात्विक विभाजन के आधार पर भी आर्यों के आक्रमण सिद्धान्त को निराधार सिद्ध किया है, अपनी किस पुरातात्विक खोज और अनुसंधान के आधार पर ? जैसा मैं ने पहले कहा है कि पुरातत्व वेत्ताओं और इतिहासकारों की एक विचारधारा रही है व्हीलर से मार्शल तक–जो। रामविलास जी के शब्दों में ''अंग्रेजों द्वारा प्रेरित भारतीय पुरातत्व की दिशा रही है।'' अंगेजों द्वारा प्रेरित भारतीय पुरातत्व की दिशा रही है।'' उसकी विपरीत लैंगडन और ब्रिजेट तथा रेमण्ड अलचिन और रेनफ्रीव की भी एक विचारधारा रही है जो भारत पर आर्यों को भारत का ही प्राचीन निवासी मानती है और यह भी मानती है कि सिन्धु घाटी में आर्य भाषा ही बोली जाती थी। अब रामविलास जी का फैसला सुनिए... ''भारत के जो इतिहासकार व्हीलर आदि की मान्यताएं दोहराते चले जाते हैं, उन्हें रेनफ्रीव के तर्क संगत विवेचन पर ध्यान देना चाहिए। लैंगडन से रेनफ्रीव (1931 से 1987) तक भारतीय पुरातत्व के ब्रिटिश विवेचन में एक धारा ऐसी रही है जो भारत पर आर्यों के आक्रमण सिद्धान्त को अस्वीकार करती है, जो सिन्धु घाटी की सभ्यता को आर्य भाषा बोलने वालों की सभ्यता मानती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अंत में यही धारा विजयी होगी क्योंकि पुरातत्व भातर पर आर्यों के आक्रमण की साक्ष्य रूप कोई भी सामग्री अबतक प्रस्तुत नहीं कर

सका।''व्हीलर आदि उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी इसलिए है कि वे आपकी मान्यता से मेल नहीं खाते और लैंगडन वगैरह की विचारधारा इसलिए विजय घोषित की गई कि वह आपकी मान्यता को सम्पुष्ट करती है। यही नहीं रामविलास जी तो यह भी कहते हैं कि ''दूसरे महायुद्ध के बाद क्रान्तिकारी जन आन्दोलन को विघटित करने के लिए अंग्रेजों ने जो कपट नीति अपनाई थी व्हीलर का पुरात्व उसके अनुरूप ढ़ाला गया था''... यह तो वही हुआ कि तुम्हारे पाँव...पाँव हमारे पाँव चरण...! क्या बात है हरिचरण!... एक बात और, कृप्या इसे व्यक्तिगत आक्षेप न समझा जाय...।

इस पुस्तक में पूरी पाठ–सामग्री–कुल 212 पृष्ठों की है और इन 212 पृष्ठों की है और इन 212 पृष्ठों में कुल मिलाकर 1072 उद्धरण हैं याने प्रति पृष्ठ औसतन 5.30 उद्धरण।... तो इसमें मौलिक लेखन रामविलास जी का कितना हुआ ? फिर एक दिक्कत और है... कई बार यही समझ में नहीं आता कि उद्धरण कहाँ समाप्त होता है और रामविलास जी की अपनी बात कहाँ से शुरू होता है ? क्या इसी को हम वैज्ञानिक और वस्तु परक विवेचन कहेंगे ? फिर एक बिल्कुल सीधा सवाल–क्या रामविलास जी पुरातत्ववेत्ता हैं ? क्या ये पुराइतिहास है ? क्या वे पुरानतत्वशास्त्री है ? क्या वे पुराभाषविद् है ? क्या वे पुरा–भूगोलशास्त्री हैं ? इन सबके अपने–अपने अनुशासन हैं। वे किस आधार पर इनमें से किसी के भी निष्कर्षों को निरस्त कर सकते हैं ? क्या वे ऋग्वेद के विशेषज्ञ है ? क्योंकि उन्होंने जो उद्धरण दिए हैं वे भी सातवलेकर के अनुवाद हैं... मैं इनमें से कुछ भी होने का दावा नही कर सकता। हाँ, वेद मैंने पढ़े हैं, मगर अनुवाद से और प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृत का भी मैं एक विनम्र विद्यार्थी रहा हूँ... एक जिज्ञासु लेकिन जागरूक पाठक.... उसी हैसियत से मेरे ये सवाल हैं। रामविलास जी की यह पुस्तक जब मेरे पास आई और मैंने इसे पढ़ा तो मुझे तुरन्त श्रीपाद अमृत डाँगे की याद आ गयी। उनकी बेटी और दामाद की, सम्भवतः वेद सम्बन्धी किसी पुस्तक की भूमिका के लिए भारतीय कम्युनिष्ट पार्टी के कुछ लोगों ने डाँगे पर संशोधनवादी चस्पा कर दिया था और उन्हें प्रतिक्रियावादी तक घोषित कर दिया था। तो क्या अब रामविलास जी को भी संशोधवादी और प्रतिक्रियावादी घोषित कर दिया जाएगा ? क्योंकि अपनी इस पुस्तक से वे जिस विचारधारा का समर्थन कर रहे हैं वह ने केवल भारतीय जनता पार्टी और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की है बल्कि किसी हद तक विश्व हिन्दू परिषद बजरंग दल और शिवसेना की भी है।... मुझे अपना एक प्रसंग सुना लेने दीजिए... एक दिन श्री सतीश जायसवाल मेरे घर आए। उन्होंने विस्तार से मेरी दिनचर्या और हाल–चाल के बारे में बात की और ''नवभारत'' के एक अंक में एक बड़ा से कैप्शन (नियमित वेद पाठ करता हुआ एक मार्क्सवादी आलोचक) देकर दो–तीन कालम का एक इन्टरव्यू–नुमा मैटर छाप दिया। इस पर मेरे प्रगतिशील दोस्तों के बीच फुसफुसाहट का दौर चला की धनंजय जी तो भारतीय जनता पार्टी में जाने की जरूरत नहीं है और ने ही आकांक्षा है। मुझे हैरत है कि इस पुस्तक की वजह से रामविलासजी पर ऐसी काई आरोप अभी तक क्यों नहीं लगा ? यह मान भी लिया कि आर्य इसी देश के थे, यहीं से पश्चिमी एशिया में उनकी संस्कृति का विस्तार हुआ। उनका धर्म–दर्शन–विज्ञान गया तो इससे ''वर्तमान समाज के पुनगर्ठन'' की कौन–सी रूपरेखा उभरती है ? उसका कौन सा ब्लूप्रिंट आपके पास है ? दरअसल रामविलास जी ने अपना ध्यान हड़प्पा पर कंद्रित किया है। इसे वे केंद्रित किया है। इसे वे केन्द्रबद्ध राज्यसत्ता और सुनियोजित अर्थतंत्र के मॉडल के रूप में पेश करते हैं। स्टुअर्ट पिगाट भी ''हड़प्पा को मूलतः भारतीय सभ्यता'' मानता है। उसे लगता है कि – 'हड़प्पा संस्कृति एक दुर्बल पुरातात्विक नामकरण है। इस नाम के पीछे पश्चिमी एशिया का एक बड़े–से–बड़े अनाम राज्य छिपा है...।' पिगाट के इस उद्धरण के बाद रामविलासजी कहते हैं–'यह अनाम एशियाई राज्य स्पष्ट ही भारतीय राज्य है' और यह भी कि ''मिस्त्र और सुमेर प्राचीन संसार के सबसे विकसित देश, संगठित उद्योग के संचालन में हड़प्पा से पीछे थे। हड़प्पा वासियों को आर्थिक नियोजन का ज्ञान था। वे नियोजित नगर निर्माण करते थे। उनके यहाँ श्रमिक आवास थे। मुद्रा विनिमय था। मोहरें और बांट थे। श्रमिकों को पगार दी जाती थी।'' यहां तक कि शताब्दियों बाद मे मौर्य साम्राज्य को भी हड़प्पा का ही उत्तराधिकारी घोषित किया गया है और उसमें कौटिल्य के आर्थशास्त्र का पूर्वानूमान किया गया है। निष्कर्ष के रूप में रामविलास जी कहते हैं–''पिगाट यह मानकर चलते हैं कि मितन्नी से ही आर्य भारत पहूंचे होंगे।'' वे भारत से निकलकर मितन्नी पहुंचे हां, उनको लिये यह कल्पनातीन है। पार्जिटर इस दुराग्रह से मुक्त थे। 1928 में लैंगडन अपने मत का प्रतिपादन कर रहे थे कि आर्य भारत के प्राचीन निवासी हैं। उससे पहले पार्जिटर ने इस प्रचलित धारणा का जोरदार खंडन किया था कि उन्होंने उत्तर पश्चिम से भारत में प्रवेश किया था।''... सिन्धु घाटी की सभ्यता, जिसे रामविलास जी आर्यों की सभ्यता मानते हैं। 1921 तक भारत की प्राचीनतम सभ्यता, आर्यों की वैदिक सभ्यता ही मानी जाती थी, लेकिन सिन्ध–पंजाब–सौराष्ट्र में उत्खनन सिर्फ हड़प्पा में नहीं हुआ। मोहनजोदडों में भी हुआ जो अब पाकिस्तान में है और इसी आधार पर पाकिस्तान अपनी सभ्यता को उससे जोड़ रहा है। याने वह राष्ट्र जिसकी उम्र कुल मिलाकर 60–65 वर्ष हे, वह अपनी सभ्यता हजारों वर्ष पहले की बता रहा है। क्या यह उसका हीनता ग्रंथि ही नहीं है ? और हम भी तो यही कर रहे हैं रामविलास जी भी तो यही कर रहे हैं, अपने अतीत–गौरव के मोह में हम अपने अतीत को जितने पीछे ले जा सकते हैं, उतनी ही हमारे पुरातनता के अहं में वृद्धि होती है। लेकिन इससे हम हासिल क्या करना चाहते हैं ? राहुल सांकृत्यापन के एक प्रसिद्ध निबन्ध 'दिमागी गुलामी' की एक बात मेरे जेहन में बेसाख्ता कौधती है कि जो जाति जितनी पुरानी होती है, उसकी मानसिकता गुलामी भी उतनी ही बड़ी होती है। बहरहाल, तो मैं कह रहा था कि खुदाई सिर्फ मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में ही नहीं हुई, चन्दूदड़ों और झमरदड़ों, नाल और

कान्हूदड़ों में भी हुई। दबार कोट, परियानों, घुण्डई, कुल्ली, मेही, अमरी, लोहूमजोदड़ो, अलीमुरार, रूपड़, रंगपुर, सुत्कगेण्डोर, लोथल, कालीबंगा में भी हुई। एन.सी. मजूमदार ने तो सिन्ध प्रदेश के दक्षिण में हैदराबाद से लेकर उत्तर में जेकोकाबाद तक बसे हुए प्राचीन नगरों की एक श्रृंखला के ध्वसांवशेषों को खोज निकाला है। सिर्फ व्हीलर या लैंगडन, सिर्फ कौसाम्बी या राधाकुमुद मुखर्जी या फिर रामविलासजी के निष्कर्ष ही अंतिम निष्कर्ष नहीं माने जाने चाहिए। सारी सामग्री, सारे सिद्धान्त, सारी अवधारणाएं पाठकों, विद्यार्थियों के सामने होनी चाहिए... मैं बहुत संक्षेप में उन्हें पेश करने की इजाजत चाहता हूँ। एक मत तो यह है कि सिन्धु सभ्यता के जनक आर्य थे। वह मलतः वैदिक सभ्यता ही है। यह मत है डॉ. लक्ष्मण स्वरूप और रामचन्द्रन का। दूसरा मत गार्डन चाइल्ड का है कि सिन्धु सभ्यता के निर्माता पणि लोग थे। यास्काचार्य ने पणियों को व्यापारी माना है। चौथा मत है–राखालदास बनर्जी तथा अन्य विद्वानों का कि सिन्धु सभ्यता के जनक द्रविड लोग थे। व्हीलर ने भी ऋग्वेद में वर्णित दस्यू या दास को सिन्धु सभ्यता का जन्म दाता माना है। फिर एक सबसे सबसे महत्वपूर्ण बात, मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और चन्ददड़ो में मिले अस्थिपंजरो के परीक्षण से सिन्धु घाटी के निवासियों की शरीर रचना पर रौशनी पड़ती है। इससे साफ होता है कि सन्धि घाटी में प्रोटो ऑस्ट्रोलायड, भूध्यसागरीय, मंगोलियन और अल्पाइन प्रजाति के लोग रहते थे और काल निर्धारण का जहाँ तक सवाल है, सामान्यतः इस सभ्यता का आरम्भकाल ईसा से लगभग पाँच हजार वर्ष पहले माना जाता है और इसका पिछला छोर लगभग 2750 ईसा पूर्व माना जाता है। हड़प्पा सभ्यता के विश्लेषण में इन बातों का ख्याल रखा जाना चाहिए। टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली के 28 अप्रैल 2005 में प्रख्यात जीनेटिसिस्ट और बायोहिस्टोरियन स्पेन्सर वेल्स का एक इन्टरव्यू छपा है– 'एन इन्क्रडीब्ल जर्नी' उसके कहा गया–''वी शेयर द डीएनए आव एक कामन ग्रैण्ड मदर हू लिव्ड सम 150000 इयर्स एगो इन अफ्रीका''–इसके बाद रेसेय या, नस्ल का झगड़ा ही कहाँ उठता है ?– आर्य हों या द्रविड़, सुमेरियन हों या मिस्त्र– हैं तो सब एक मातमही की संतान ? प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को से 1963 में प्रकाशित एक पुस्तक है– 'दे रेसेस आव मैनकाइन्ड'–लेखक हैं प्रोफेसर एम. नेस्तयूर्ख।

इसकी भूमिका में प्रोफेसर एन.एन. चेबोकसारोव लिखते हैं–''द रेसेस आव मैनकाइन्ड आर इन एक्चुअल फैक्ट, जियाग्राफीकल (आर टेरीटोरियल) वेरिएशन्स, हिस्टॉरिकली कन्डीशन्ड, आव अ सिंगल फिजिकल टाइप– मैन''–रेसेस याद आया। मेरे एक मित्र थे, अल्लाह को प्यारे हो गए हैं। वो खुद को शुद्ध पठान कहा करते थे। और मैं उन्हें छेड़ने के लिए उसमें जोड़ दिया करता था हां, करिया पठान क्योंकि शुद्ध पठान तो खूब गोरा–नारा, लम्बा–तगड़ा और तीखे नाक–नक्श वाला होता है। मैं यहाँ रंगभेद की शरण नहीं ले रहा हूं, नस्ल की बात कर रहा हूँ और जब भी नस्ल की बात उठती है मुझे हिन्दी साहित्य के महापंडित आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की एक बात याद आ जाती है। वो कहते हैं कि जाति, भाषा, धर्म, संस्कृति, नस्ल इनकी शुद्धता एक विशुद्ध मिथ है, झूठ है, गप्प है क्योंकि इन सबमें मिलावट होती है। मिलावट होती है। मिलावट से ही इनका विकास होता है। शुद्धता के आग्रह से विकास नहीं होता। शुद्धता के दुराग्रह से कूपमंडूकता आती है या विघटन होने लगता है जैसे कि पारसी। तो मुझे यह भारतीयता का गर्व, विश्व–गुरु का दम्भ और आर्य दर्प भी कुछ अजीब–सा लगता है। इसमें और नाजी सोच में फिर क्या अंतर रहा गया? नाजी भी खुद को शुद्ध आर्च कहते–मानते थे। जबकि हिटलर किसी कोण से आर्य नहीं था, न वह लम्बा–तगड़ा था, न उसके नाक–नक्श तीखे थे! तो क्या हमारा आर्य–दर्प भी एक फासिस्ट सोच का समर्थन नहीं करता? सृष्टि कथाएँ और दार्शनिक उद्भावनाओं में रामविलास जी कहते हैं "बाइबिल का वेस्ट ऑफ वाटर्स मजे में ऋग्वेद के 'अप्रकेतं सलिलं' का अनुवाद हो सकता है।" मुझे एक विलक्षण व्युत्पत्तिशास्त्री की याद आ गई। एक उर्दू दाँ कहने लगे कि ये जो अंग्रेजी है, वो उर्दू से ही निकली है। हम कहते हैं "देखो रे शान" और अंग्रेजी में हो जाता है "डेकोरेशन"– और अपना "शेख पीर" वहाँ हो जाता है शेक्सपीयर!..... मैं कहना यह चाहता हूँ कि आर्यों के मूल निवास स्थान और आदिदेश के निर्धारण के प्रसंग में पुरातत्व–वेत्ता और पुरा–इतिहासकार आम तौर पर पाँच साधनों को आधार बनाकर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं – पुराइतिहास, पुरा–भाषा विज्ञान, पुरातात्विक सामग्री, शरीर–रचना–शास्त्र (रेशियल एन्थ्रापालाजी) और शब्दार्थ–विकास–शास्त्र (सीमासियालाजी) और इन पाँचों के आधार पर आर्यों के आदि देश या मूल निवास स्थान के बारे में चार सिद्धान्त प्रचलित हैं– पहला यह कि आर्यों का आदि देश योरोप था। फिलिप्पोसासिटी और सर विलियम जोन्स ने संस्कृत ईरानी और यूरोप की विविध भाषाओं के तुलानात्मक अध्ययन से यह प्रतिपादित किया है। यूरोप में भी आर्यों का आदि देश कहाँ था, इस पर भी अलग–अलग मत हैं। डॉ. गाइल्स मानते हैं कि आर्यों की आदि भूमि है– हंगरी, बोहेमिया और आस्ट्रिया या डेन्यूब नदी का प्रदेश। जर्मनी के विद्वान पेन्का जर्मन प्रदेश को आर्यों का आदि देश मानते हैं। नेहरिंग दक्षिणी रूस–यूक्रेन को उनका आदि देश मानते हैं। दूसरा सिद्धान्त यह मानता है कि आर्यों का आदि देश एशिया था। एशिया में भी बैक्ट्रिया को आर्यों का आदि देश मानते वाले विद्वान हैं– जे.जी. रोड। मैक्समूलर ने यह प्रतिपादित किया कि आर्यों का आदि देश का एशिया था। एडवर्ड मेयर की मान्यता है कि पामीर का पठार उनका आदि देश था। मोट्जे और हर्ट्ज फेल्ड मानते हैं कि रूसी तुर्किस्तान उनका आदि देश था। ब्रेन्ड स्टीन एशियाई रूस में किरगीज स्टेप्स के मैदान को आर्यों का आदि देश मानते हैं। प्रसिद्ध भाषा–वैज्ञानिक भोलानाथ तिवारी भी यही मानते हैं। तीसरा सिद्धान्त यह मानता है कि आर्यों का आदि देश आर्कटिक प्रदेश या उत्तरी ध्रुव प्रदेश है। इसके प्रतिपादक हैं– महान देशभक्त और राष्ट्रवादी लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक। उन्होंने

अपनी पुस्तक–आर्कटिक होम इन वेदाज में यह प्रतिपादित किया है। उत्तरी ध्रुव की दीर्घकालीन ऊषा, वहाँ के पट्मासी दिन–रात, शीत की बहुलता और प्राकृतिक दृश्यों का जो वर्णन वेद और आवेस्ता में है उसी के आधार पर तिलक की यह मान्यता है। तिलक से बड़ा राष्ट्रवादी कौन हो सकता है? वे तो राष्ट्रवाद के प्रवर्तक और प्रेरणा–पुरुष रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि रामविलास जी ने तिलक का कहीं नामोल्लेख तक नहीं किया। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी "ऋग्वेदिक आर्य" नामक पुस्तक लिखी है। उसका भी यहाँ जिक्र तक नहीं है। राहुल जी ने तो 'मध्य एशिया का इतिहास' नामक दो खंडों में एक महाग्रंथ भी लिखा है। रामविलास जी की यह पुस्तक पढ़ते हुए मुझे लगा कि कहीं उनके मन में राहुल जी से होड़ लेने या उनकी बराबरी करने की मंशा तो नहीं रही? चौथा सिद्धांत है कि आर्य भारत के मूल निवासी है। रामविलास जी का यह आग्रह कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं, उनकी कोई नई–मौलिक खोज नहीं है। भारत में भी पं. गंगानाथ झा ने ब्रह्मर्षि प्रदेश को आर्यों की मूल भूमि माना है। अविनाशचन्द्र दास और सम्पूर्णानन्द ने सप्त–सिन्धु प्रदेश को, श्री डी.एस. त्रिवेदी ने मुलतान के पास देविकानन्द प्रदेश को, श्री कल्ल महोदय ने काश्मीर और हिमालय प्रदेश को तथा डॉ. राजबली पाण्डेय ने मध्यप्रदेश (याने उत्तरप्रदेश और बिहार) को आर्यों का आदि देश प्रतिपादित किया है। मैंने इस मुद्दे पर इतने विस्तार से बात इसलिए की कि पाठकों को यह भी मालूम हो कि "पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद" में जो प्रतिपादित किया गया है वही एक मात्र सिद्धांत नहीं है। इस प्रसंग में और भी सिद्धांत है। सरस्वती नदी के लुप्त होने के प्रसंग में एक बात ध्यान देने की यह है कि रामविलास जी तो लिखते हैं कि "ऋग्वेद में सरस्वती जल से भरी शक्तिशाली नदी है। ऋग्वेद ही नहीं उसके बहुत समय बाद रचे गए यजुर्वेद में भी उसका यही स्वरूप है।" लेकिन श्री श्याम कश्यप भूमिका में लिखते हैं–"हड़प्पा (सिन्धु) सभ्यता का ह्रास (जो प्रायः 1750 ईसा पूर्व माना जाता है) सरस्वती के जल हीन होने पर हुआ था यानी सरस्वती के जल हीन होने से बहुत पहले, क्योंकि अथर्ववेद में भी वह जल से भरी–पूरी है।" इसे क्या समझा जाए?... वो कहावत है ... गुरु तो गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गए। ..... बहरहाल एक महत्वपूर्ण बात मैं रेखांकित करना चाहता हूँ।

पश्चिमी एशिया में आर्यों के प्रभाव–विस्तार के सन्दर्भ में देव पूजा के भारतीय रूप के अन्तर्गत ओ०आर० गुर्ने के एक लम्बे उद्धरण के बाद रामविलास जी लिखते हैं, "दंड की कठोरता को छोड़कर सब कुछ ऐसा है जिससे भारत के लोग अच्छी तरह परिचित हैं। ..... जिप्पवन्द के ऋतु देव का संबोधन हटा दिया जाए तो यह विश्वास करना कठिन होगा कि यह सब भारत क बाहर भी कहीं होता था, वह भी ईरान, ईराक पार करके तुर्की के उत्तरी भाग में। या तो यह सारा आचार–विचार भारत से वहाँ पहुँचा था या फिर वहाँ से भारत आया। दोनों जगह उसका स्वतंत्र विकास हुआ हो या दोनों के भिन्न स्त्रोत हों, इसकी सम्भावना कम क्यों है? दोनों जगह एक–साथ साइमल्टेनियस या थोड़े आगे–पीछे उनका स्वतंत्र विकास क्यों नहीं हो सकता? मसलन बांस से टोकनी बुनने का काम या मृतकों के लिए स्तम्भ लगाने की प्रथा सिर्फ बस्तर के आदिवासियों में विकसित नहीं हुई, यह अफ्रीका और अमरीका के आदिवासी कबीलों में भी है। रामविलास जी कहते है कि आर्यों के रथों में अरे होते थे,, सुमेर के रथों में नहीं। इस प्रसंग में मेरा कहना है कि हमारे यहाँ सदियों से बैलगाड़ियाँ चल रही है। कालान्तर में उनमें एक सुधार तो यह हुआ कि चक्कों में लोहे के रिंग लगने लगे और अब उनमें टायर लगाए जाते हैं। तो सुमेर के जिस रथ की बात की है। रामविलास जी ने, तो क्या जरूरी है कि सुमर के रथें में अरे लगाने के लिए आर्य ही वहाँ गए ? वे खुद भी उसका विकास क्यों नहीं कर सकते थे ? टक्नॉलाजी का विकास करने का जिम्मा क्या सिर्फ भारत के आर्यों ने ही ले रखा था ? क्या तकनीकी विकास वहाँ नहीं हो सकता ? मुझे लगता है रामविलास जी तो यहाँ सांस्कृतिक राष्ट्रवादी से भी आगे बढ़कर अंधराष्ट्रवादी हो गए हैं, धुर ''शावनिस्टिक'' हो गए हैं। वो लगभग हर चीज को यहीं से गया हुआ बता रहे हैं। मसल वो कहते हैं ''रथ और सूर्य बिम्ब का प्रसार मिस्त्र और यूनान से लेकर बैबिलोन (ईराक) तक है। यह भारतीय आर्यों के प्रभाव–विस्तार का प्रमाण है।'' मेरा सवाल है कि सूर्य क्या सिर्फ भारत में ही उदित होता है ? उसके बिम्ब, उसकी प्रार्थना उसकी पूजा समानान्तर और स्वतंत्र रूप से अन्य देशों– मसलन लैटिन अमरीका की संस्कृति और माया सभ्यता में भी कयों नहीं हो सकती ? आज भी हम देख रहे हैं कि एक नागर सभ्यता है और एक ग्रामीण संस्कृति है और दोनों आस–पास और पास–पड़ोस में है। जलवायु और भौगोलिक भी आपके आचार–विचार ही नहीं आपकी शरीर रचना और रंग आदि भी निर्धारित करती है। तो प्रकृति का प्रभाव भी पड़ता है। संस्कृति का मतलब सिर्फ मनोरंजन प्रदर्शन उत्सव नहीं है। वह भारत भवन और कला परिषद संग्रहालय और रवीन्द्र भवन तक सीमित नहीं है। सभ्यता और संस्कृति का विकास होता है– जीवन संघर्ष के दौरान। ए.एल. क्रोबर को एन्थ्रापालाजी को पढ़िए तो समझ में आएगा कि संस्कृति और भाषा की प्राकृति क्या है ? संस्कृति में परिवर्तन कैसे होता है ? विकास और विस्तार कैसे होता है ? वह सिर्फ साहित्य का प्रश्न और चिन्ता नहीं है। उसके नृतत्वशास्त्रीय औश्र समाजशास्त्रीय सन्दर्भ और अर्थ है लेकिन अब हालत यह हो गई है कि साहित्य ही साहित्य का स्त्रोत होता जा रहा है। साहित्य के आलावा अन्य अनुशासनों की ओर काई जाना ही नहीं चाहता। इसलिए मेरा कहना है कि यदि रामविलास जी ने खुद काई पुरातात्विक खोज की होती तो उन्हों व्हीलर की आलोचना और लैंगडन का सहारा लेने की जरूरत नहीं पड़ होती। आपने चार लेखकों को एक तरफ रख लिया औद दूसरे चार को दूसरी तरफ, फिर एक वर्ग की मजममत और दूसरे वर्ग की तारीफ। रामविलास जी की आलोचना की यही पद्धति है। वे अपना अभीष्ट पहले तय कर लेते हैं, दिशा तय कर लेते हैं फिर उसके लिए तर्क, प्रमाण और उद्धरण जुटाना

शुरू करते हैं और बिना दाँयें–बाँयें, ऊपर–नीचे, आजू–बाजू देखे नाक की सीध में चले चलते हैं। किसी को ध्वस्त करते और किसी को ऊर्ध्व–बाहू महान घोषित करते!... साहित्य में भी उन्होंने यही किया है। पंत को ध्वस्त और निराला को महान... घोषित करके ही हम दम दिया!

इस पुस्तक के सन्दर्भ में रामविलास शर्मा की मूल विचारधारा पर यदि गौर किया जाय तो उसमें आया परिवर्तन अचरज पैदा करता है। वे मार्क्सवादी से सांस्कृतिक राष्ट्रवादी हो गए लगते हैं। यह सबसे बड़ा परिवर्तन है। मुझे लगता है इसे हाथों–हाथ उठा लेने के पीछे भी मकसद यही है कि यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की मार्क्सवादी औचित्य सिद्ध कर रही है।